International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2017; Page No. 91-92

दलित समुदाय और सामाजिक परिवर्तन

डॉ0 लतिका सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, किसान पी0जी0 कालेज, बहराइच, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

दलित हजारों वर्षों से अस्पृश्य या अछूत समझी जाने वाली उन तमाम शोषित जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त होता है, जो हिन्दू धर्म– शास्त्रों द्वारा हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित है और जिसका शोषण, उत्पीड़न किया जाता रहा है। हमारा समाज शोषण की बुनियाद पर खड़ा है जिससे पूरा समाज विघटित होता गया है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विषमतापरक संरचना के कारण दलित समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी उत्पीड़न का शिकार होता रहा है। कोई गरीबी से त्रस्त है तो कोई अशिक्षा से, कोई सामाजिक अपमान से त्रस्त है तो कोई भूमिहीन कृषक मजदूर बना रहने को अभिशप्त है। दलित समाज का अधिकांश तबका समुचित विकास की न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित है। यह दलित मराठी, गुजराती, हिन्दी और अन्य भाषाओं का एक प्रचलित शब्द है जिसका अर्थ है गरीब और उत्पीड़ित। लेकिन सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक सन्दर्भो में दलित शब्द को एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ मिल जाता है। आन्दोलन और साहित्य के साथ दलित शब्द जोड़ने से एक भिन्न समझ का सम्प्रेषण होता है। इस विशिष्ट सन्दर्भ में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग सत्तर के दशक के प्रारम्भ में बाबा साहेब अम्बेडकर के नवबौद्ध अनुयायियों ने किया था। इस दलित शब्द में अन्तर्निहित था कि, ''जिसे तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जे से ऊपर बैठे लोगों ने जान बूझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है। इस शब्द में छुआछूत, कर्म सिद्धान्त और जातिगत श्रेणी क्रम का नकार निहित है।''[1]

भारतीय समाज वर्णो में बंटा हुआ था। कर्म के आधार पर विभाजन किया गया था, पर बाद में जातिवाचक बन गया और उच्च निम्न जाति के लोगों की सृष्टि भी हुई। चार वर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र आते हैं, जिनके अन्दर कई उपजातियों की परिकल्पना की गयी। सबसे निचले स्तर के शूद्र माने गये और उनका काम अन्य तीनों वर्णो की सेवा बताया गया। जीवन भर मजबूरन उन्हें सारे काम करने पड़े। शिक्षा, स्वतन्त्रता, समता आदि से उनको दूर ही नहीं, वंचित भी रखा गया। साथ ही सवर्णो के उत्पीड़नों की सदियों तक झेलना पड़ा। ओमप्रकाश बाल्मीकि लिखते हैं, ''दलितों का जीवन जहाँ सामाजिक उत्पीड़न, शोषण, दमन से भरा हुआ है, वहीं व्यवस्था के नाम पर लादी गयी मर्यादायें, बंधन दलित जीवन की विपन्नताएं बनकर रहे हैं। आर्थिक विवशताओं और विसंगतियों स्थितियों ने दलित जीवन को नर्क बनाया है। ग्रामीण परिवेश के जातीय उत्पीड़न से पलायन कर शहरों, महानगरों की ओर आने वाले दलितों के भीतर हीनता भाव इतना गहरा होता है कि उसे कोई भुक्त–भोगी ही जान सकता है''[2]

भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त प्रतिगामी, जड़ ताकतों से संघर्ष करने के लिए दलित विमर्श इसीलिए मैदान में है कि वर्णों एवं हजारों जातियों के स्तम्भनुमा शोषण का खात्मा करके मानवीय, भेदभाव रहित न्यायपरक समाज बनाया जा सके। मानव की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है कि धर्म–संस्कृति, परम्परा के नाम पर भेदभाव की आँखों वाली जातिवादी रूग्ण मानसिकता पर कड़ाई से रोक लगे। जातिवाद की समस्या मात्र दलितों की समस्या नही हैं, यह सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र की समस्या है। दलित मुक्ति के सवाल से केवल दलितों का ही हित होने वाला हो, ऐसा नहीं है, अपितु यह सारे देश की, बहुजन की आवश्यकता है। ब्राह्मण यदि उच्च है तो दलितों को कोई आपत्ति नहीं, लेकिन प्रश्न यह है कि दलित नीचा क्यों? देश के सभी नागरिक उच्च एवं समकक्ष हैं, यदि उनमें भेदभाव होगा तो अशान्ति फैलेगी।

दलित विमर्श एक ऐसी अवधारणा है जो आधुनिक मूल्यों, संवैधानिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय एवं जनतांत्रिक संरचनाओं के संघर्षो से विकसित हुई है। इसमें धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरूद्ध मानव की प्रतिष्ठा का चिन्तन विद्यमान है। दलित–विमर्श जहाँ अपने पुराधाओं की रचनाशीलता, बौद्धिकता व आन्दोलनों से बहुत कुछ ग्रहण करता है, वहीं समानान्तर रूप से देश के सबसे बड़े कानून भारतीय संविधान में दलितों के उत्पीड़न के हजारों वर्षो की गाथा की समाप्ति हेतु प्रदत्त प्रावधान एवं उनके अनुपालन में उठने वाले स्वरों, जनांदोलनों से शक्ति लेता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् अम्बेडकर की प्रेरणा से ही दलित आन्दोलन का उदय होता है, दलित जागृति भी होती है। अम्बेडकर ने शिक्षा, संगठन तथा संघर्ष पर बल दिया। उनकी वाणियों से तथा अनुभवों से दलित समुदाय ने ऊर्जा ग्रहण कर ली। उसकी ऊष्मा हम दलित विमर्श में देखते हैं। उत्तराधुनिक समय मे हाशियेकृत वर्ग का परिधि से केन्द्र की ओर आना एक महान घटना है। भारत में मराठी से शुरू होकर दलित लेखन ने अन्य भाषाओं में विस्तार पाया है। हिन्दी दलित लेखन तकरीबन तीन दशक पुराना है। दलित रचनाकार सहानुभूति को ही नही, स्वानुभूति को महत्व देते हैं। भोगे हुए यथार्थ की भट्ठी में वे रचना के कच्चे माल को पकाते हैं और उसके द्वारा सहृदयों में समाज की कुरीतियों तथा कुव्यवस्थाओं के प्रति घृणा पैदा करने की कोशिश करते हैं, जो विशाल अर्थ में जनजागृति की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायता देती है। ''डॉ0 अम्बेडकर ही पहले भारतीय इतिहासकार है, जिन्होंने इतिहास लेखन में दो तथ्यों को स्वीकार किये जाने की बात की है। पहली बात यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और यह कि भारत तीन प्रकार का रहा– ब्राह्मण–भारत, बौद्ध–भारत, हिन्दू– भारत। इनकी अपनी–अपनी संस्कृतियां रही है। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण से पहले भारत का इतिहास ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है। जो इन दो तथ्यों को स्वीकार नहीं करता, वह भारत का सच्चा इतिहास जो युग के अर्थ और उद्देश्य को स्पष्ट कर सके, कभी नहीं लिख सकता।''[3]

यह सत्य ही है कि जाति व्यवस्था ने दलित समाज का शोषण किया और दलितों पर पीड़ादायक प्रतिबन्ध लाद दिये। दुर्बलता, दरिद्रता और अज्ञानता के कारण दलित समाज लूटा गया। ''दरअसल दलित उत्पीड़न लम्बे समय से चली आ रही एक वर्ग विशेष की स्वार्थी मानसिकता का परिणाम है, जिसका मूल कारण तो आर्थिक है और आर्थिक हित को साधने के लिए ही धर्म और समाज की रूढ़िगत मान्यताओं को हथियार के रूप में लम्बे समय से इस्तेमाल किया जा रहा है। अतः इस व्याधि का यदि कोई इलाज करना है, तो वह है इस वर्ग की उस मानसिकता में परिवर्तन करना, जिसके द्वारा दलितों का उत्पीड़न किया जाता है और वह स्वार्थी वर्ग इस प्रकार के परिवर्तन के लिए तैयार होगा भी नहीं। अतः हमें इसके दूसरे इलाज की ओर ध्यान देना होगा और वह इलाज है, दलित वर्ग को आर्थिक दृष्टि से मजबूत करना। यह तभी हो सकता है जबकि यह वर्ग शिक्षित होकर अपने हितों के प्रति जागरूक होकर संघर्ष के लिए तैयार हो। उस संघर्ष के लिए सम्पूर्ण दलित वर्ग का संगठित होना नितान्त आवश्यक है।''[4]

अन्ततः कह सकते हैं कि दलित का आत्मसंघर्ष भले ही कोई ऐतिहासिक महत्व न रखता हो, लेकिन विषम परिस्थितियों में संघर्ष करने वालों के लिए उम्मीद की किरण अवश्य उत्पन्न करता है या उन्हें प्रेरणा प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची

1. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ0–196 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
2. ओमप्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0–76 राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।
3. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ0–26, इतिहास बोध प्रकाशन इलाहाबाद।
4. डॉ0 एन0 सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ0–248, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।